अध्याय-5

भू-आकृति विज्ञान और सतही जल

नदियाँ न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि जीवन के सभी रूपों के लिए अमूल्य हैं। नदियां लोगों के बसने के लिए उपयोगी जगह ही नहीं हैं अपितु लोग पीने के पानी की आपूर्ति और सिंचाई, बिजली का उत्पादन, माल का परिवहन और भोजन प्राप्त करने के लिए भी नदी के पानी का उपयोग करते हैं। नदियां सभी प्रकार के पौधों और जानवरों के लिए प्रमुख जलीय पारिस्थतिकी तंत्र हैं। यहां तक कि नदियां अपने नदीतल के माध्यम से पानी को नीचे की ओर निर्वहण करके भूमिगत जलभृत् को जल से भरे हुए रखने में मदद करती हैं।

बांधों जैसी जलीय संरचनाओं के निर्माण के लिए धारा प्रवाह के बारे में ज्ञान नितान्त आवश्यक है। सिंधु घाटी में पहली बड़ी मानव सभ्यताएं (3000-1500 ई.पू.); जिन्हें सिंधु सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है, उच्च स्तर की जलीय अभियांत्रिकी कौशल का प्रदर्शन करती हैं (पांडे, 2016)। हड़प्पा संस्कृति के अचानक समाप्त होने के बाद, वैदिक युग का प्रारंभ हुआ। वैदिक ज्ञान के अनुसार, इस ग्रह का सारा जीवन आप: (पानी) से विकसित हुआ है । लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बाद के साहित्यिक संदर्भ और पुरातात्विक आंकड़े तटबंधों, नहरों और अन्य जलीय कार्यों का विकास इंगित करते हैं। साहित्य बताता है कि मौर्य काल के दौरान भारत के सिंधु गंगा के मैदानों और देश के अन्य हिस्सों में सिंचाई और पीने के पानी के लिए बड़ी संख्या में जलीय संरचनाओं (बांध, नहर और झील) का निर्माण किया गया था (शॉ इत्यादि, 2007; सुटक्लिफ इत्यादि, 2011)। आश्चर्यजनक रूप से, इनमें से कई संरचनाएं बाढ़ सुरक्षा उपायों पर विचार करके उत्प्लव मार्गो से सुसज्जित थी । यह अध्याय संक्षेप में भू-आकृति विज्ञान और सतही जलविज्ञान के क्षेत्र में वेदों और अन्य प्राचीन साहित्य में उपलब्ध प्राचीन ज्ञान के बारे में चर्चा करता है।

ऋग्वेदिक भजन (X.बी2.1 और X.121.1) कहता है कि सृष्टि की उत्पत्ति जल और ब्रह्मांडीय स्वर्ण अण्डे (भ्रूण) (हिरण्यगर्भ) से हुई थी; जो पानी की उम्र, जफाइट्स के मूल, आदिकालीन मछलियों, सरीसृप, अकशेरुकी, कशेरुक और स्तनधारियों की उत्पत्ति के पृथ्वी के भूवैज्ञानिक और जैविक विकास के अनुरूप है।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिददयावापथिवी अप्रथेताम्।।**आर.वी.**X,82.1 ।।

हिरण्यगर्भः समवर्ततााग्रे भूतस्य जातः पतिरर्के आसीत्।
स दाधार पृथिवी घामुतेमां कस्मे देवाय हविषा विधेम्।।आर.वी.X,121.1 ।।

ऋग्वेद के अनुसार, पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में ऊंचाइयां हैं, यह पहाड़ों का भार उठाती है और मैदान में जंगलों के पेड़ों का आश्रय (क्षमा) है। वह तेज वर्षा से सजीवता लाती है, और उसके बादलों की चमक से स्वर्ग की बौछारें छंट जाती हैं। पृथ्वी (मही) महान है, दृढ़ और चमकदार (अर्जुनी) है।

शायद ऋग वैदिक आर्यों को नदियों के माध्यम से क्षेत्रों के ढलान की अवधारणा का भी ज्ञान था जैसा कि नीचे संकेत दिया गया है (ऋग्वेद.IX, 88.6):

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशां असृग्रन।। आर.वी.IV,88.6 ।।

नदी के प्रवाह, जिसकी अशांति समुद्रों के मिलने के बाद खो जाती है, के बारे में बात करते समय ऋग्वेद में कहा गया है:

समन्या यन्त्युय यन्त्यन्याः समानमूर्व नघः पृणान्त।। आर.वी.II, 35.3 ।।

ऋग्वेद के श्लोक IV, 18.6 और IV, 19.3 में कहा गया है कि नदियाँ सूर्य और बादल की बेटियाँ हैं। वे अपने रास्ते में आने वाली मिट्टी, चट्टानों आदि को तोड़ते हुए महासागरों की ओर भागती हैं। वे टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर बहती हैं:

एता अर्षन्त्यलालाभवन्तीऋतावरीरिव संक्रोशमानाः।
एता वि पुच्छ किमिदं भतन्ति कमापो अद्रिंपिरिधिं रुजान्ति।। आर.वी.IV,18.6 ।।

ऋग्वेद काल के दौरान, आर्य संभवतः अलग-अलग स्थिति में नदी के वेग से परिचित थे। एक श्लोक (VI 24.6) में पहाड़ी नदियों के ढलान से नीचे उच्च गति से बहने का उल्लेख है:

वि त्वदापौ पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।। आर.वी.VI,24.6 ।।

साम वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के समय तक, भारतीयों ने प्राकृतिक भूगोल और भू-आकृति विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया था। यह भौगोलिक तकनीकी शब्द – उपहवर (पर्वत ढलान, सामवेद II, 5.9), इरिण (फांक या ऊपर), शिला (पथरीली जगह), क्षयण (रहने योग्य

स्थान), काट (कठिन संचार वाले जंगल), हद (झील), लाप (बीहड़ भूमि या खराब भूमि) (सामवेद, IV, 5.9.1)। साम वेद में, हमें नदी के मुंह का एक संक्षिप्त लेकिन ठीक वर्णन मिलता और नदी के मुंह के विपरीत समुद्र की एक लहर इसमें इसके पानी का एक हिस्सा भेजती है (सामवेद XIV, 4)। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त (XII) प्राकृतिक भूगोल - पहाड़, बर्फ से ढके पहाड़, वन भूमि, मैदानी क्षेत्र (सम) और बारहमासी धारा या ढलान (पवत) का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है । अथर्ववेद अनुसार अगर पानी का स्रोत पहाड़ों पर है, तो नदी बारहमासी होगी और उच्च गति के साथ बहेगी (अथर्ववेद, 15.3), यथा :

ये नदीनां संस्त्रवन्त्युत्सासः। ए.वी.I.,15.3 ।।

इसी प्रकार, अथर्ववेद के श्लोक II, 3.1 में भी इसी तथ्य का वर्णन किया गया है कि हिमखंड पर्वत से निकलने वाली नदियाँ गर्मियों में भी बहती रहेंगी।

अदो यदवधावत्यवत्कमाधि पर्वतात्।। ए.वी.II,3.1 ।।

गोपथ ब्राह्मण में, घूमकर बहने वाली नदी के लिए विपाट नाम है। इसे भी दो प्रकार से स्रोत या जलप्रपात से जाना जाता था, जिनके नाम हैं गर्म और शीतल (शीतोष्णाविहोत्सौए जी.बी., 8) हैं। प्रसिद्ध महाग्रंथ रामायण में भी विभिन्न प्रकार के भू-आकृति विज्ञान प्रतिमानों के बहुत समृद्ध और सटीक ज्ञान का विवरण है। रामायण में उल्लिखित पानी से संबंधित कुछ भू-वैज्ञानिक प्रतिमान, नदियां और अवनालिका और पठार, गुफायें और फव्वारे (II, 54.42), समतल भूभाग (II, 56.11) नदियों के रेतीले तट (रामायण II, 55.31) हैं : (राम)

सरित्प्रस्त्रवणस्थान् दरीकन्दरनिर्झरान्।। राम. II, 54.42 ।।
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते। पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने।। राम.II.56.11 ।।

विचित्रवालुकजलां हंससारसनादिनाम्।
रेमेजनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम्।। राम. II,55.31 ।।

गंगा द्वारा संचित भूमि को घना और पार करने में कठिन बताया गया है (रामायण। II, 85.4),यथा:

कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं यथा।
गहानोयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः।। राम. II,85.4 ।।

पानी के झरने (II, 94.13) और एक नदी के अवतरण (II, 103.25) का ज्ञान नीचे वर्णित है:

जलप्रपातैरुदभेदैर्निष्पन्दैश्च व्कचित्।
स्त्रवदिभर्भत्ययं शैलः स्त्रवन्मद इव द्विपः।। **राम.** II,94.13 ।।

नर्दी मन्दाकिनी रम्यां सदा पुष्पितकाननाम्।। **राम.** II,103.24 ।।

शीघ्र स्त्रोतसमासाघ तीर्थ शिवमकर्दमम्।
सिषिचुस्तूदकं राजे तत एतद् भवत्विति।। **राम.**II,103.25 ।।

बर्फ के पिघलने के बाद, एक पहाड़ी स्थलाकृति कितनी आकर्षक हो जाती है, इसे इस प्रकार से वर्णित किया गया है -हिमात्यये नगमिव चारूकन्दरम (रामायण II, 7.15)। महाकाव्य के लेखक ने "गैर-प्रतिरोधी या नरम खड़े नदी तट पर नदी के कटाव को भी निम्नवत चिह्नित किया है:

रुणद्वि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा।। **राम.**II,63.46 ।।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः।। **राम.**,V,34.19 ।।
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह।। **राम.**,VII,14.18 ।।

रामायण के श्लोक 23.42 में, पहाड़ों पर वर्षा की कटाव-संबंधी विनाशकारी प्रकिया के बारे में वर्णन किया गया है। अर्थात:

सायकैश्चापवकभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः।
दारयन्ति स्म संकुद्वामेघा इव महागिरिम्।। **राम.**, VII, 23.42 ।।

महाभारत हिमालय पर्वतों को तीन क्षेत्रों में विभाजित करता है। इसमें कई बार रेगिस्तान के बड़े भूभागों का उल्लेख किया गया है (I, 70.2)। कुछ संदर्भ में 'नदीकच्छ' शब्द का प्रयोग किया गया है। शायद यह उस भू भाग को बताता है जिसे आजकल डेल्टा कहा जाता है।

एक एवोत्तमवलः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः।
स वनस्यान्तमासाघ महच्छून्यं समासदत्।। **एम.बी.**,I,70.2 ।।

नदीकच्छोद्भवं कान्तमुच्छतध्वज संनिभम।। **एम.बी.**,I,70.17 ।।

पाणिनि की अष्टाध्यायी (600 – 700 ईसा पूर्व) में हमें कई महत्वपूर्ण भू-आकृति विज्ञान प्रतिमानों के बारे में पता चलता है। भाषा विज्ञानी बहती और अपने किनारों को तोड़ती नदी को 'भिन्घ' और जो जल-प्लावन करती है उसे उदध्व कहते हैं ; (III, 1.15)। ग्लेशियर को हिमानी (IV, 1.49) है, यथा:

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्मृड़हिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणमानुक।।**अष्टाध्यायी**.,IV,1.49।।

मौर्यकाल के दौरान कौटिल्य (4 वीं शताब्दी ईसा पूर्व) द्वारा अर्थशास्त्र में स्थलाकृति और भू-आकृति विज्ञान पर बहुत अच्छी तरह से चर्चा की गई है। हिमालय और महासागर के बीच विभिन्न प्रकार की भूमि जैसे "जंगलों, गांवों, झरनों, समतल मैदानों और असमान जमीन" का उल्लेख किया गया है (अर्थशास्त्र, शामशास्त्री द्वारा अनुवाद पेज 404)। विभिन्न स्थानों पर उन्होंने उपजाऊ, बंजर, खेती योग्य, अनुपयोगी और बेकार भूमि की बात की है, जिससे पता चलता है कि उस समय उन्हें मिट्टी के विज्ञान का भी अच्छा ज्ञान था।

वायु पुराण में विभिन्न प्रकार की स्थलाकृति अर्थात् झीलों, घाटियों, बंजर पटरियों (अध्याय 38 (38.36)), पहाड़ों के बीच चट्टानी दर्रों (अन्तदोणी) (38.36) का उल्लेख किया गया है ।

पश्चिमायां दिशि तथा येन्तरद्रोणिविस्तराः।
तान्वर्ण्यमानांस्तत्वेन श्रृणुतेमान्द्विजोत्तमाः।। **वायु**.,38.36 ।।

वायु पुराण के अध्याय 38 में पहाड़ी क्षेत्र (38.78) में बड़ी संख्या में गर्म स्रोतों के बारे में भी बताया गया है।

तथा हयनलतप्तानि सरांसि द्विजसत्तमाः।
शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्त्राणि शतानि च।। **वायु**.,38.78 ।।

मार्कंडेय पुराण (53.21-22) में, हमें एक विलक्षण प्रकार की स्थलाकृति जो "किमपुरुसावेरसा और सात अन्य देश" में पाई जाती है जहां पानी जमीन से बुलबुले के रूप में बाहर आता है, के बारे में वर्णन मिलता है यथा:

नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्तकुलाचलाः।
एकेकस्त्रिस्त था देशे नघश्चाद्रि विनिः सृताः।। **मार्कंडेय** P.53.21 ।।

यानि किं पुरुषाघानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमः।
तेषूदिभज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते।। **मार्कंडेय** P.53.22 ।।

विष्णु पुराण (II, 5.3) उप-स्थलीय क्षेत्र की मिट्टी को सात वर्गों में वर्गीकृत करता है। (1) काली, (2) सफेद या पीली, (3) नीली या लाल, (4) पीली, (5) बजरीला, (6) पहाड़ी या पथरीली और (7) सुनहरी।

शुक्लकृष्णाः पीताः शर्कराः शैलकाज्वनाः।
भुमयो यत्र मैत्रेय वरप्रासादमाण्डिता।। **विष्णु**.,II,5.3 ।।

वृहत्सेत्रासमसा (6-7 शताब्दी ईसवी) (त्रिपाठी, 1969) में कई वैज्ञानिक और गणितीय संकेतांक हैं जो कुछ जल-सर्वेक्षण संबंधी या जलविज्ञानीय नियमों के अनुरूप हैं। अंगुतारनिकाय (400 ईसा पूर्व से पहले) ने झीलों को चार श्रेणियों (भाग II, पृष्ठ 105, त्रिपाठी, 1969) में वर्गीकृत किया है।

उपसंहार

उपरोक्त चर्चाओं से, हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में, धारा प्रवाह और भू-आकृति का ज्ञान वैज्ञानिक तर्ज पर अच्छी तरह से विकसित था। सिंचाई और घरेलू उद्देश्यों के लिए उस समय के दौरान कई जलीय संरचनाएँ निर्मित थीं । एक बहती नदी के माध्यम से क्षेत्र के ढलान और विभिन्न चरणों में नदी के वेग जानने की तकनीक का विकास किया गया था। साथ ही पर्वतीय नदियाँ आमतौर पर बारहमासी होती हैं और उनके द्वारा समय-समय पर बाढ़ के मैदानों में उपजाऊ मिट्टी का निक्षेपण किया जाता है, उस समय पर ज्ञात था जो कि आधुनिक अनुभव के अनुरूप है। बाढ़ से बचाव के लिए बांधों में जलमार्ग की व्यवस्था भी की गई थी । विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियां जैसे स्रोत, जलप्रपात, पहाड़, पठार, अपरदित भूमि आदि के साथ-साथ कई भौगोलिक शब्द जैसे शिला, इरिण, क्षयण, लोप उपयोग में थे। भूमि का वर्गीकरण जैसे उपजाऊ, अनुपजाऊ, खेती योग्य, बंजर भूमि आदि और मिट्टी वर्गीकरण, जैसे कि काला, पीला, लाल, बजरी, कंकर आदि चौथी शताब्दी ई.पू से पहले अच्छी तरह से प्रचलन में थे। वर्तमान में भी ये प्रचलन में हैं और इसलिए, इस क्षेत्र में प्राचीन भारतीयों की उपलब्धि को महत्वपूर्ण माना जा सकता है ।